Research Article

# समाजवाद की अवधारणा, भारतीय समाजवाद की आधारशिलाऐं एवं स्वरुप

Ambika Bhatt[1], Vivek Rawat[2], Shiv Kumar Bhardwaj[3*]

[1]Assistant Professor, B.Ed. Department, Kanahiya Lal DAV (Post Graduate) College, Roorkee, India
[2]Graduate Student, Political Science, Balwant Singh Mukhiya (Post Graduate) College, Roorkee, India
[3]Lecturer, Pauri Garhwal, Pauri, India
*Corresponding author: Shiv Kumar Bhardwaj. Email: bhardwajsk79@gmail.com
https://doi.org/10.36018/dsiij.v15i.138

सारांश
समाज मनुष्य के विकास की वो आधारशिला है जो उसके विकास के लिए समुचित अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित करता है। किस प्रकार समाज एक व्यक्ति के लिए अवसरों की व्यवस्था करता है यह निर्भर करता है उस समाज की प्रकृति एवं समाज में व्याप्त समाजवादी सिद्धान्त पर। समाजवाद एक विचार है जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति की एक पृथक् एंव महत्वपूर्ण भूमिका होती है और यही विचारधारा समाज के उत्थान हेतु इसके प्रत्येक सदस्य को भेदभाव रहित वातावरण उपलब्ध करवाने का प्रयास करती है। विश्व में विभिन्न समयों पर अलग–अलग समाजों में समाजवाद के विविध स्वरुप विकसित हुए हैं, जो समाजवादी सिद्धान्तों में अन्तर को परिलक्षित करते हैं। प्रत्येक समाज ने अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के अनुरुप ही समाजवाद के एक विशिष्ट स्वरुप को अंगीकार किया है। समाजशास्त्रियों द्वारा समाजवाद के इन विविध रुपों का विश्लेष्णात्मक–विवेचन भी किया गया है एवं वास्तविकता के अनुरुप ही इसके मानव कल्याणकारी स्वरुप को अपनाने पर बल दिया है। एक ऐसी समाजवादी संकल्पना जो किसी भौगोलिक परिधि, किसी समुदाय विशिष्ट के विकास की ही पक्षधर ना हो, जो संकीर्णता से ग्रसित ना हो वरन समूची धरा के अस्तित्व के संरक्षण का विचार रखती हो, तथा वसुधैव–कुटुम्बकम की सोच को साकार करने का लक्ष्य रखती हो मानव कल्याणकारी हो सकती है। समाजवादी विचारधारा समय के साथ–साथ सभी राष्ट्रों में एक नई उर्जा का संचार करेगी, जिससे सम्पूर्ण विश्व में आपसी सहयोग बढ़ेगा। एक लोक–कल्याणकारी समाज के लिए समाजवादी विचारधारा को शिक्षा में स्थान दिया जाना चाहिए, क्योंकि समाज व शिक्षा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण इनके उद्देश्य परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं, समाज की आवश्यकता को शिक्षा व शिक्षा की आवश्यकता को समाज ही परिपूर्ण कर सकता है, दोनों एक–दूसरे के लिए साधन व साध्य का कार्य करते हैं।

कूट शब्द
समाजवाद, आर्थिक समाजवाद, भारतीय समाजवाद, सैन्य समाजवाद ।


ISSN: 2279-0578 (PRINT); 2582-4589 (ONLINE)
PUBLISHED BY DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR, INDIA

प्रस्तावना

समाजवाद एक विचार है जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति की एक पृथक् एंव महत्वपूर्ण भूमिका होती है और यही विचारधारा समाज के उत्थान हेतु इसके प्रत्येक सदस्य को भेदभाव रहित वातावरण उपलब्ध करवाने का प्रयास करती है। यह राज्य के तहत समाज का कर्तव्य होता है कि वह सभी व्यक्तियों में समरसता का भाव उत्पन्न करे; और सभी व्यक्तियों की आधारभूत आवश्यकताओं, जीविकोपार्जन हेतु व्यवसाय, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं, शिक्षा इत्यादि की व्यवस्था उपलब्ध कराये तथा इसके बदले में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक उत्थान व राज्य की उन्नति के लिए अपनी योग्यता, कुशलता के अनुसार परस्पर सम्बन्ध स्थापित करते हुए राज्य व समाज के हित में कार्य करना होता है; यही समाजवाद है। समाजवाद का अर्थ व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पक्ष के मध्य समन्वय स्थापित करने से है, इसमें व्यक्ति के किसी भी पक्ष की अवहेलना करना अर्थात् समाज के स्वरूप/ढाँचे में छेड़छाड़ करना है, जिससे सामाजिक क्रांति उत्पन्न होने का भय रहता है, जो समाज जैसी व्यवस्था एंव व्यक्ति के अस्तित्व दोनों के लिए ही हितकर नहीं होता है। समाजवाद के द्वारा व्यक्ति से व्यक्ति, व्यक्ति से राज्य, व्यक्ति से शासन, समाज से समाज, समाज से राज्य व शासन व्यवस्था के मध्य परस्पर सम्बन्ध मजबूत किये जाते हैं [1]।

इतिहास

इतिहास साक्षी है कि राज्य या समाज के गठन से पूर्व व्यक्ति आदिवासियों का जीवन व्यतीत करता था, लेकिन कालान्तर में उत्पन्न उनकी सुरक्षा, स्वार्थ और आपसी सम्बन्धों के फलस्वरूप उनमें परस्पर एक समझौता हुआ, जिसने राज्य अथवा समाज जैसी व्यवस्था को जन्म दिया। इस व्यवस्था में सभी व्यक्तियों को समान रूप से साधनों को आवंटित करने का प्रयास किया गया और यहीं से समाजवाद की अवधारणा का उद्भव हुआ। तथापि समाज में व्यक्तियों में आपसी मतभेद के कारण शक्ति अर्जित करने की इच्छा उत्पन्न हुई, और शक्ति अर्जन का मापन धन–सम्पत्ति के संग्रहण से किया जाता था; अर्थात् जितनी अधिक धन–सम्पत्ति उतना अधिक शक्तिशाली। शक्ति और सत्ता प्राप्त करने के लिए इतिहास में अलग–अलग समय पर भिन्न–भिन्न क्रांतियों ने जन्म लिया, शायद ही ऐसी कोई शासन व्यवस्था रही हो जिसमें क्रांति या आंदोलन न हुए हो।

उपरोक्त विवेचन में भी इस बात को स्पष्ट किया गया है कि आदिकालीन साम्यवादी समाज में मनुष्य पारस्परिक सहयोग द्वारा आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति और प्रत्येक सदस्य की आवश्यकतानुसार उनका परस्पर बँटवारा करते थे। परंतु यह साम्यवाद प्राकृतिक था; मनुष्य की सचेत कल्पना पर आधारित नहीं था। यदि इसके मूल में जाने हेतु पाश्चात्य इतिहास का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि शुरूआत से ही ईसाई पादरियों के रहन–सहन का ढंग बहुत कुछ साम्यवादी था, वे एक साथ मिलजुल कर रहते थे, लेकिन अनकी आय का माध्यम धर्मावलंबियों से मिलने वाला दान था। तथा उनका आदर्श सामान्य लोगों के लिए नहीं बल्कि पादरियों तक ही सीमित था एवं उनका उद्देश्य आध्यात्मिक था, भौतिक नहीं। यही बात मध्यकालीन ईसाई साम्यवाद के सम्बन्ध में भी सही है। इसी क्रम में अध्ययन से ज्ञात होता है कि पेरू देश की प्राचीन इंका सभ्यता को ''सैन्य साम्यवाद'' की संज्ञा दी जाती है, जिसका आधार सैन्य संगठन था और यह व्यवस्था शासक वर्ग का हित ही साधने तक ही सीमित थी, सामान्य लोगों से यहाँ इस व्यवस्था का कोई सरोकार नहीं था। साम्यवाद का स्वरूप और उसके उद्देश्यों में पहले काफी असमानताऐं झलकती थीं लेकिन समय के साथ–साथ इसका स्वरूप भी समाजवादी हो गया, जिसका एकमात्र उद्देश्य लोक–कल्याण है।

समाजवाद की संकल्पना में आर्थिक योजनाओं के प्रयोग मात्र को ही समाजवाद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि इनके द्वारा पूँजीवाद को ठेस पहुँचे। उदाहरण के तौर पर देखें तो नात्सी दल द्वारा बैंको का राष्ट्रीकरण किये जाने पर पूँजीवादी व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। समाजवाद का भावनात्मक ढाँचा स्थापित करनें में इग्लैण्ड में सत्रहवीं सदी के दौरान ईसाईयत के दायरे में विकसित लेवलर्स तथा डिग्गर्स व सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के मध्य यूरोप में विकसित होने वाले ऐनाबैपटिस्ट जैसे रैडिकल आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन पाश्चात्य चिंतन में समाजवाद की आधुनिक और औपचारिक परिकल्पना फ्रांसीसी विचारकों सैं–सिमों और चार्ल्स फुरिए तथा ब्रिटिश चिंतक राबर्ट ओवेन की निष्पत्तियों से निकलती है। ये विचारक व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्द्धा की जगह आपसी सहयोग पर आधारित समाज की कल्पना करते थे। समाजवाद की राजनीतिक विचारधारा 19 वीं सदी के तीसरे और चौथे दशकों के दौरान इग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी जैसे यूरोपीय देशों में लोकप्रिय होने लगी थी। औद्योगीकरण और शहरीकरण की तीव्र गाति तथा पारम्परिक समाज के अवसान ने यूरोपीय समाज को सुधार और बदलाव की शक्तियों का अखाड़ा बना दिया था। जिसमें मजदूर संघो और चार्टरवादी समूहों से लेकर


ISSN: 2279-0578 (PRINT); 2582-4589 (ONLINE)
PUBLISHED BY DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR, INDIA

ऐसे गुट सक्रिय थे जो आधुनिक समाज की जगह प्राक्–आधुनिक सामुदायिकतावाद की वकालत कर रहे थे। यही कारण भी बना आधुनिक समाज के समाजवाद की नई संकल्पना का।

भारत में समाजवाद का उदय

भारत में यदि हम सामाजिक–सांस्कृतिक जागरण को समाजवाद से जोड़ेगे तो यह कतिपय गलत नहीं होगा, क्योंकि भारतीय समाज सुधारकों का सर्वप्रथम प्रयास यही रहा था, कि लोगों के मन से अंधविश्वास और रूढ़िवादिता जैसे तुच्छ विचारों से उनको मुक्त कराना। प्राचीन भारत की आंदिकाल से ही संकल्पना एक समाजवादी समाज की रही है, जो इस सूक्ति से झलकती है वसुधैव कुटुम्बकम, जिसमें कि धरा को एक परिवार और प्रत्येक मनुष्य को इसके सदस्य की संज्ञा दी गई है एवं परिवार के प्रत्येंक सदस्य के विकास की संकल्पना को धारण किया गया है। भारतीय समाज में समाजवाद की संकल्पना आदिकाल से ही व्याप्त है इसे कृत्रिम रुप से आरोपित करने की आवश्यकता नहीं है, पर कालान्तर में मनुष्य की स्वार्थपरकता के कारण इसका स्वरुप विकृत अवश्य हुआ है। इसी कारण भारतीय समाज में इसके पुनःजीवन की आवश्यकता अनुभूत हुई। 19 वीं सदी भारतीय पुनर्जागरण का काल रहा है, इस काल में राजाराम मोहन राय द्वारा 1838 में ब्रहम समाज की स्थापना, ईश्वर चन्द विद्यासागर द्वारा 1855 में विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में अपनी शक्तिशाली आवाज अठाना इत्यादि। पुनर्जागरण द्वारा सामाजिक समाजवाद मजबूत करने हेतु केवल हिन्दू समाज ने ही अपनी आवाज नहीं उठाई बल्कि मुस्लिमों ने भी इसमें बढ़–चढ़कर भाग लिया। सैयद अहमद खाँ जिनका अलीगढ़ विश्व विद्यालय को स्थापित करने में बहुत बड़ा योगदान रहा। सैयद अहमद खाँ और मोहम्मडन एग्लो–ओरियंटल कॉलेज से सम्बन्धित मुस्लिम जागृति का यह आंदोलन अलीगढ़ आंदोलन के नाम से जाना जाता है, सैयद अहमद खाँ हिन्दू–मुस्लिम एकता के पुरजोर समर्थक रहे हैं। उनका मत था कि – ''हम (हिन्दू–मुसलमान) एक ही देश के निवासी हैं; इसलिए एक राष्ट्र हैं, और देश की तथा हम दोनो समुदायों की प्रगति हमारी एकता, पारस्परिक सद्भावना तथा प्रेम पर आश्रित है'' (ए0 श्रीधरन, पृष्ठ संख्या 119, भारत एंव विश्व का इतिहास) [2]।

उपरोक्त कथन के संदर्भ में कहा जा सकता है कि ज्योतिराव गोविन्दराव फुले 'ज्योतिबा' द्वारा 1873 ई0 में सत्यशोधक समाज की स्थापना भारतीय सामाजिक समाजवाद की एक धारणा ही है, सत्यशोधक समाज ने सभी जातियों तथा धर्मों के लोगों के लिए इसके द्वार खोल दिए। इसका मुख्य लक्ष्य सभी को समान अधिकारों की प्राप्ति करवाना था। सामाजिक समाजवाद के स्थापत्य के लिए सामाजिक सुधारकों ने स्वयं ही जिम्मेदारी ली, किन्तु आर्थिक (पूँजीवाद) समानता स्थापित करना भारतीय उपमहाद्वीप में इतना सरल नहीं रहा। वैश्विक इतिहास में भारत को सदा से ही सोने की चिड़िया कहा गया है, लेकिन 1600 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के पश्चात् अंग्रेजों ने भारतीयों का आर्थिक ही नहीं वरन हर प्रकार से शोषण किया। इसी कारण भारतीय उत्पादक वर्ग पर अधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ा, उत्पादक वर्ग को उनके उत्पाद की उचित कीमत न मिलने पर तथा वही उत्पाद परिपक्व वस्तु के रूप में निर्मित कर सामान्य लोगों को अधिक मूल्य पर बेचे जाने से उत्पादक वर्ग की आर्थिक स्थिति बिल्कुल कमजोर हो चुकी थी। भारत में उत्पादक वर्ग का प्रथम आन्दोलन गाँधी जी की अगुवाई में बिहार के चंपारन जिले में 1917 में किया गया, यहाँ नील के खेतों में काम करने वाले किसानों पर यूरोपीय निलाहे बेहद अत्याचार करते थे। इसके बाद विभिन्न समयान्तरालों में गाँधी जी ने ऐसे आन्दोलनों को तैयार किया, जिससे अंग्रेजों को उत्पादक वर्ग की माँगे माननी पड़ी थी, ऐसे आन्दोलनो में गाँधी जी के साथ राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूक–हल जे0 बी0 कृपलानी, नरहरि पारिख इत्यादि भी सम्मिलित थे। इसके पश्चात् गाँधी जी ने अहमदाबाद में मजदूरों की हड़ताल 1918 में गुजरात में खेड़ा आन्दोलन भी किया। ऐसे आन्दोलनों का उद्देश्य उत्पादक वर्ग की आर्थिक या व्यावसायिक माँगों की पूर्ति करना था, जैसे–अहमदाबाद के मजदूरों की हड़ताल मिल मालिकों के खिलाफ थी और उनकी माँग मजदूरी में 35ः की वृद्धि करने की थी, व उनकी यह माँग मानी भी गई। ये सभी आन्दोलन भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक समाजवाद के उदय के कारण रहे हैं।

भारतीय समाजवाद के विविध स्वरूप : समाजविज्ञानियों के अनुसार

डॉ0 राम मनोहर लोहिया यूरोपीय समाजवाद को एशियाई देशों के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे। अतः उन्होंने उसके स्थान पर एशियाई समाजवाद की अवधारणा का प्रतिपादन किया। इस दृष्टि से उन्होंने कहा कि एशियाई समाजवादियों को मौलिक चिंतन तथा अभिक्रम का प्रयास करना चाहिए एवं अपनी नीतियाँ उस सभ्यता के संदर्भ में विकसित करनी चाहिए, जो सदियों पुराने निरंकुशवाद एंव सामन्तवाद के कूड़े–करकट से उभरने का प्रयत्न कर रही है। 26 मार्च, 1952 का रंगून में आयोजित


ISSN: 2279-0578 (PRINT); 2582-4589 (ONLINE)
PUBLISHED BY DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR, INDIA

एशियाई समाजवादी कॉन्फ्रेंस की प्रारम्भिक सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि– ''एशिया में जहाँ आर्थिक समस्याएँ मुँहबाये खड़ी है, पश्चिमी ढ़ंग का समाजवादी प्रजातंत्र कदापि उपयोगी नहीं हो सकता। एशिया के लोग रोटी के लिए अपने जनतांत्रिक अधिकारों को बेचने के लिए सरलता से तैयार हो जायेंगे। परम्परागत तरीके से सोचने पर हमें रोटी की समस्या के समाधान हेतु पूँजीवादी या साम्यवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना ही अनिवार्य दिखाई देने लगती है, किन्तु दोनों ही अर्थवयवस्थाएँ इस एक जैसी ही हैं। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि पूँजीवाद यदि निजी सम्पत्ति को प्रोत्साहन देता है तो साम्यवाद सार्वजनिक सम्पत्ति को। पूँजी एंव सत्ता का केन्द्रीकरण दोनों में एक सा है। आर्थिक केन्द्रीकरण अंततः बेकारी को बढ़ा देता है'' [3]।

उपरोक्त विवेचन से डॉ0 लोहिया का तात्पर्य है कि एशियाई देशों की समस्याएँ यूरोपीय देशों के लिए किस प्रकार उपयोगी हो सकती हैं ? स्वतंत्रता के पश्चात् सम्पुर्ण भारत वर्ष तथा एशिया के अधिकतर राष्ट्र मूलभूत आवश्यकताओं के लिए जूझ रहे थे। इसी कारण एशिया के समस्त राष्ट्रों की कुछ समान समस्याओं के कारण ही लोहिया ने एशियाई समाजवाद का प्रतिपादन किया। डॉ0 लोहिया समाजवाद के परम्परागत रूप में विश्वास नहीं रखते थे, वे उसे एक बीते हुए युग की वस्तु मानते थे। अतः अपनी इस मान्यता के आधार पर उन्होंने नव–समाजवाद की एक सार्वभौम और सर्वमान्य परिकल्पना प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनके द्वारा प्रतिपादित इस नव–समाजवादी व्यवस्था के तीन मूलभूत आधार उनके द्वारा निर्धारित किये गये, जिन पर उसका निर्माण किया जाना था। ये तीन मूलभूत आधार थे, पहला– सभी उद्योगों, बैंको तथा बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण, दूसरा– सम्पूर्ण विश्व–मानवों के जीवन स्तर का सुधार तथा तीसरा– एक विश्व–संसद की स्थापना। उनकी यह नव–समाजवाद की परिकल्पना आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के पूर्ण विकेन्द्रीकरण पर आधारित थी।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने समाजवाद के तीनों स्वरूपों (आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक) से सम्बन्धित अपने विचार प्रतिपादित किये, लेकिन पण्डित जवाहर लाल नेहरू के विचारों में केवल लोकतांत्रिक समाजवाद की अधिकता झलकती है उनके चिन्तन का मुख्य लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना करना था और लोकतंत्र उसे स्थापित करने का एक साधन। इस तरह उनके राजनीतिक चिन्तन का केन्द्रीय तत्व लोकतांत्रिक समाजवाद था। एक तरफ से वे जार्ज बर्नार्ड शॉ, बटैण्ड रसल तथा जे0 एम0 कीन्स के उदारवादी साम्यवादी विचारों से प्रेरित थे, तो वहीं दूसरी तरफ वे वैज्ञानिक समाजवाद के मार्क्सवादी विचारों से भी गहरे रूप से प्रभावित थे। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं कि ''मार्क्स के सिद्धांत और दर्शन ने मेरे मस्तिष्क के अनेक अँधेरे कोनों को प्रकाशित कर दिया'' [4]।

1936, में कॉंगेस के लखनऊ अधिवेशन में नेहरू अपने अध्यक्षीय भाषण में कहते हैं कि ''जब मैं समाजवाद शब्द का प्रयोग करता हूँ तो केवल मानवीय नाते से ही नहीं, वरन् वैज्ञानिक–आर्थिक दृष्टि से भी करता हूँ। समाजवाद एक आर्थिक सिद्धांत की अपेक्षा कुछ अधिक अर्थ रखता है, वह एक जीवन दर्शन है और इसलिए वह मुझे उपयुक्त लगता है। मैं समाजवाद के सिवाय अन्य कोई दूसरा रास्ता नहीं देखता जो गरीबी, बेकारी, बेइज्जती और गुलामी से भारत की जनता को मुक्ति दिला सके'' [4]। नेहरू का मानना था कि समाजवाद का अर्थ केवल आर्थिक समानता से नहीं लिया जा सकता, समाजवाद समाज का दर्शन है, जो भारतीय जनता को उनकी विविध समस्याओं से उन्हें मुक्ति दिला सकता है और इसके लिए उन्होंने सामाजिक समाजवाद के अंतर्गत लोकतंत्र को एक साधन के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति से भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना वे वर्ग–संघर्ष आधारित हिंसक क्रांति के माध्यम से नहीं, वरन् लोकतांत्रिक तरीकों के प्रयोग के माध्यम से करना चाहते थे। उनका मानना था कि लोकतांत्रिक तरीकों से समाज में राजनीतिक अधिकारों की मान्यता, आर्थिक और सामाजिक न्याय, संसाधनों के केन्द्रीकरण का निषेध तथा उत्पादन और वितरण की एक न्यायसंगत प्रणाली की सुनिश्चित व्यवस्था की जा सकती है। अतः पंडित नेहरू की कल्पना का समाजवादी लोकतंत्र एक राजनीतिक लोकतंत्र का ही नहीं अपितु आर्थिक और समाजिक लोकतंत्र का मूर्त रूप था [5]।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू जी ने देश का नेतृत्व किया, इसलिए समाजवाद की स्थापना के लिए उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किये, इस दिशा में पहला पग तब उठाया गाया जब पंडित नेहरू की सक्रिय भूमिका से भारतीय संविधान का निर्माण हुआ और इसे भारत में लागू किया गया, जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार लोकतांत्रिक समाजवादी समाज के निर्माण के लिए आवश्यक तत्वों को शामिल किया गया। इन तत्वों में विशेष रूप से भारतीय संविधान की प्रस्तावना, उसके नीति निर्देशक तत्वों तथा कुछ सीमा तक मौलिक


ISSN: 2279-0578 (PRINT); 2582-4589 (ONLINE)
PUBLISHED BY DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR, INDIA

अधिकारों कों लक्षित किया जा सकता है। इस दृष्टि से संविधान की प्रस्तावना तथा नीति निर्देशक तत्वों का विशेष महत्व है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए दूसरा कदम 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' पर आधारित पंचवर्षीय विकास योजनाओं के माध्यम से उठाया गया।

जय प्रकाश नारायण मानववादी आदर्शों से प्रेरित व्यक्ति थे, इनके विचार मार्क्सवाद से प्रभावित थे, लेकिन महात्मा गाँधी के आन्दोलनों से जुडकर इनके विचारों में गाँधीवाद के विचार निर्मित होने लगे, इन विचारों ने मार्क्सवाद की जगह ग्रहण कर ली। गाँधीवाद और मुख्य रूप से उनके द्वारा की जाने वाली उसकी समाजवादी व्याख्या उनके जीवन का मूलमंत्र बन गया। सन् 1939 में समाजवादी विचारधारा के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से जयप्रकाश नारायण ने बम्बई से 'कॉंग्रेस सोशलिस्ट' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया तथा किसानों, मजदूरों और महिलाओं को संगठित करने के लिए समाजवादी मोर्चे की स्थापना की। उनका मानना था कि भारतीय समाज ऐसा होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समता एंव स्वतंत्रता पर आधारित शोषणमुक्त परिवेश प्रदान किया जाये। समाज का चरित्र सत्य और अहिंसा के गाँधीवादी आदर्शें का मूर्त रूप हो, ये उनकी गाँधीवादी धारणा थी।

महात्मा गाँधी समाजवादी समाज की स्थापना हेतु आदर्श राज्य के रूप में 'रामराज्य' की स्थापना करना चाहते थे। एक ऐसा समाज जिसमें शिक्षा की उचित व्यवस्था हो, शासन की शक्तियाँ विकेन्द्रित हों, राज्य हिंसामुक्त हो, लोकतांत्रिक हो, तथा नैतिक तत्वों से युक्त व्यक्ति का विकास करने में राज्य सक्षम हो, यह संकल्पना गांधी जी द्वारा परिकल्पित की गई थी। गाँधी के परिकल्पित आदर्श राज्य में समाजवाद के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तीनों पक्षों का विलय है।

गांधी जी के आदर्श राज्य की संकल्पना निम्न विशेषताओं को परिलक्षित करती है –

*लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था*

गाँधी जी अपने आदर्श राज्य की स्थापना के लिए शासन व्यवस्था को लोकतांत्रिक स्वरूप देना चाहते थे, जिसमें सत्ता की शक्ति जनता में निहित होगी।

*विकेन्द्रित शासन व्यवस्था*

गाँधी जी समाजवाद की स्थापना हेतु सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर बल देते थे, उनका मानना था कि लोकतंत्र की स्थापना में प्रत्येक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व आवश्यक है तथा ग्राम पंचायतों के गठन से लोकतंत्र की भावना जन–जन तक फैलेगी, जिससे क्षेत्र विशेष की समस्याएँ स्वयं उसी क्षेत्र की जनता द्वारा समाप्त की जा सकेंगी और शक्तियों को विकेन्द्रित किया जा सकता है जैसे – केन्द्रीय सरकार, प्रांतीय सरकार तथा स्थानीय – स्वशासन द्वारा।

*आर्थिक विकेन्द्रीकरण*

राजनीतिक क्षेत्र की तरह आर्थिक व्यवस्था को भी समाजवाद की स्थापना हेतु पूर्ण विकेन्द्रीकरण के आधार पर निर्मित किया जाना चाहिए। गाँधी जी समाजवाद की स्थापना हेतु केवल बड़े उद्योग धंधों को प्रोत्साहन नहीं देते थे, वरन् वे कहते थे कि इनके साथ–साथ लघु और उद्योग–धंधों को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए, जिससे ग्रामीण लोग अपने जीविकोपार्जन हेतु इनसे जुड़ सके। वे बड़े उद्योगों को मार्क्स की भाँति शोषण का कारण मानते थे और कुटीर उद्योगों को शोषणमुक्त मानते थे, क्योंकि उनका प्रबन्ध ग्रामीण लोगों में होता है।

*प्रत्येक व्यक्ति के लिए शारीरिक श्रम आवश्यक है*

गाँधी जी का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए शारीरिक श्रम अनिवार्य है, जिससे व्यक्ति अपनी रोजी–रोटी कमा सके। किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे के श्रम का उपयोग करके लाभ कमाये व उसे उचित मजदूरी प्रदान न करे।

*शिक्षा की व्यवस्था*

गाँधी जी का कहना है कि शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिससे समाज का उद्धार हो सकता है, वे कहते हैं कि राज्य बालकों के लिए निःशुल्क व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

*अहिंसा और शांति की व्यवस्था*

गाँधी जी समाजवादी समाज की स्थापना के लिए हिंसा को विरोधी तत्व मानते हैं, वे कहते हैं कि शांति की स्थापना के लिए राज्य आरक्षी (पुलिस) की व्यवस्था करेगा, जिसका कार्य मैत्रीपूर्ण तरीके से समाज में शांति स्थापित करना होना चाहिए।


ISSN: 2279-0578 (PRINT); 2582-4589 (ONLINE)
PUBLISHED BY DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR, INDIA

गाँधी जी के समाजवादी विचार स्वतंत्रता से पूर्व ही परिलक्षित हो गये थे, उनके रामराज्य की स्थापना हेतु संविधान में उनके विचारों को नीति निर्देशक सिंद्धांतों मे स्थान प्रदान किया गया। नीति निर्देशक सिद्धांतो को तीन रूपों में वर्गीकृत किया गया – समाजवादी सिद्धांत, गाँधीवादी सिद्धांत तथा उदारवादी सिद्धांत। उपरोक्त सिद्धांतो की सहायता से ही संविधान ने भारतीय समाज को समाजवादी समाज के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। इन सिद्धांतों का भारतीय लोकतंत्र में अपना ही महत्वपूर्ण स्थान है।

समाजवादी समाज की स्थापना हेतु अवरोध

संविधान निर्माण के समय जब नीति निर्देशक सिद्धांतों को समाजवादी समाज की स्थापना हेतु संविधान में स्थान दिया गया तो इसके साथ एक प्रावधान यह भी था जो इन्हें लागू करने के लिए राज्य को बाध्य नहीं किया जा सकता । ये निम्नलिखित प्रकार से समाजवादी समाज की स्थापना में अवरोधक का कार्य करते हैं –

संविधान में नीति निर्देशक सिद्धांतों को राज्य सरकार की इच्छा पर छोड दिया गया है कि वे चाहे तो इन्हें लागू करें अथवा नहीं।

नीति निर्देशक सिद्धांत गैर–न्यायोचित हैं, इन्हें यदि राज्य अपनी नीतियों में लागू नहीं करता है, तो कोई भी व्यक्ति इन्हें न्यायालय में चुनौती नहीं दे सकता [6,7]।

निष्कर्ष

उपरोक्त ऐतिहासिक विवेचन इस बात पर बल देता है कि वास्तव में वर्तमान समय में समाजवाद की प्रांसगिकता क्या है ? कोई भी राष्ट्र समाजवादी विचारधारा से अनभिज्ञ एवं अछूता नहीं है, क्योंकि इस विचारधारा से राष्ट्र ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व भी प्रभावित है, तथा प्रत्येक राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह इस विचारधारा को वैश्वीकरण के साथ जोड़कर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्वशांति का समर्थन करे एंव वसुधैव कुटुम्बकम की परिकल्पना को साकार करे। गाँधी जी ने राष्ट्रवाद के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद की बात भी कहीं थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'गाँधी मर सकता है, गाँधीवाद नहीं।' और वास्तव में गाँधी जी के समाजवादी विचारों का आज सम्पूर्ण विश्व अनुसरण भी कर रहा है।

इसलिए हम कह सकते हैं कि समाजवादी विचारधारा समय के साथ–साथ सभी राष्ट्रों में एक नई उर्जा का संचार करेगी, जिससे सम्पूर्ण विश्व में आपसी सहयोग बढ़ेगा। एक लोक–कल्याणकारी समाज के लिए समाजवादी विचारधारा को शिक्षा में स्थान दिया जाना चाहिए, क्योंकि समाज व शिक्षा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण इनके उद्देश्य परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं, समाज की आवश्यकता को शिक्षा व शिक्षा की आवश्यकता को समाज ही परिपूर्ण कर सकता है। दोनों एक–दूसरे के लिए साधन व साध्य का कार्य करते हैं।

संदर्भ सूची


1. Vincent A. Modern political ideologies, 3rd edition, Oxford: Wiley-Blackwell; 2010
2. Sridharan A Bharat evam Vishwa ka Itihas. Delhi, Delhi: Republic Publication; 2014.
3. Jauhary JC. Tulnatmak Rajnitik Sidhant. Agra, U.P.:S. B. P. D Publication; 2018:p. 241
4. Jauhary JC. Tulnatmak Rajnitik Sidhant. Agra, U.P.:S. B. P. D. Publication; 2018:p 257
5. Presidential Address to the Indian National Congress. Source: The Labour Monthly. 1936; 18(5):282-305
6. Laxmikanth M. Bharat ki Rajvyavastha, 5th edition. Chennai, Chennai: Mac Graw Hill Publication; 2014.
7. Laxmikanth M. Bharat ki Rajvyavastha (6th ed.). Chennai, Chennai: Mac Graw Hill Publication; 2019.



ISSN: 2279-0578 (PRINT); 2582-4589 (ONLINE)
PUBLISHED BY DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR, INDIA